P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय संगीत में स्वर–सप्तक का विकास

मनीष डंगवाल
विभाग प्रभारी/असि. प्रोफेसर,
संगीत विभाग,
रा.स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रानीखेत(अल्मोडा), उत्तराखण्ड
भारत

सारांश

मानव ने अपने अनुभव को समाज में प्रकट करने के लिए चित्र, चिन्ह, भाषा आदि अनेक माध्यमों की परिकल्पना की। संगीत मानवीय भावाभिव्यक्ति की चरम अनुकल्पना है। संगीत का आधार 'स्वर' है। विश्व की सभी संस्कृतियों के संगीत में सात स्वरों का प्रचलन है। आधुनिक भारतीय संगीत में भी विश्व की अन्य संस्कृतियों के समान ही सात मुख्य स्वर तथा उनके पांच उपभेदों का ही प्रचार है। परंतु प्राचीन भारतीय संगीत में सात स्वरों का प्रचलन नहीं था। वैदिक कालीन संगीत में एक या तीन स्वरों के प्रचलन के प्रमाण प्राप्त होते हैं जो कालान्तर में धीरे–धीरे विकसित हो कर एक स्वर से बढ़ कर सात स्वर हो गए और आधुनिक युग में भारतीय संगीत में सात स्वर तथा उनके पांच रूपों (कुल बारह) स्वरों का प्रचार है। प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय संगीत में स्वर–सप्तक के इसी क्रम को प्रकाशित करता है।

मुख्य शब्द : स्वर, सप्तक, आर्चिक–गाथिक–सामिक, उदात्त, अनुदात्त व स्वरित, साम स्वर–लौकिक स्वर, ग्राम, साधारण स्वर, शुद्ध–विकृत स्वर

प्रस्तावना

भारतीय संगीत शास्त्र में संगीत को व्यक्त करने वाली सूक्ष्यतम इकाई 'श्रुति' को माना गया है। परन्तु संगीत के प्रायोगिक पक्ष की अभिव्यक्ति की प्रथम इकाई 'स्वर' है। श्रुतियों को स्वरों के माध्यम से ही प्रदर्शित किया जा सकता है। श्रुतियां स्वयं में अपना अस्तित्व स्पष्ट करने में असमर्थ हैं। परंतु श्रुतियों के बिना स्वरों को प्रकट करना भी असम्भव है। श्रुतियों एवं स्वरों के इसी सम्बन्ध को प्राचीन भारतीय संगीत में ग्राम कहा गया है। भारतीय संगीत में ग्रामिक व्यवस्था के लोप के पश्चात् ही ग्राम के समतुल्य स्वर–सप्तक या सप्तक की परिकल्पना का प्रादुर्भाव हुआ।

प्राचीन वैदिक साहित्य में स्वर के लिए ही अच्, यम, स्वार, स्वार्य तथा जाति संज्ञाएँ भी प्राप्त होती हैं। ध्वनि के ऐसे विशेषण को स्वर कहा जाता है जिसे उत्पन्न होने के लिए किसी अन्य ध्वनि का आश्रय नहीं लेना पड़ता तथा वह स्वयमेव पूर्ण होने के साथ ही रंजक भी होता है।

13वीं शताब्दी में पं. शार्ङ्गदेव द्वारा रचित ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में स्वर की परिभाषा निम्नवत् दी गई है–

स्निग्धोऽयं अनुरणनात्मकं।
स्वतो राजन्ते य स्वर अभिधीयते।।

अर्थात् जो स्निग्ध (कोमल व मधुर) व अनुरणन (गूंज) युक्त हो तथा स्वयं प्रकट होता है वह (ध्वनि या नाद) स्वर कहलाता है। तात्पर्य यह कि संगीत में ऐसी स्वयंभू विशिष्ट ध्वनि को स्वर कहा जाता है जो सुनने में प्रिय या मधुर व कोमल हो तथा दीर्घ काल तक गुंजायमान रह सके जिस कारण श्रोता उस ध्वनि का आनन्द लेने के साथ ही स्पष्ट पहचान भी सके।

संगीत में मूल रूप से ऐसे सात स्वर पहचाने गए हैं। भारतीय संगीत में इनके लिए पृथक्–पृथक् संज्ञाएँ प्राप्त होती हैं– षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत तथा निषाद। इन्हीं संज्ञाओं के प्रथम वर्णों का चयन कर इन स्वरों को गेय रूप में प्रयुक्त किया गया– सा, रि या रे, गा, म, प, ध और नि। इन सात स्वरों के समूह को ही भारतीय संगीत में 'सप्तक' या 'स्वर–सप्तक' कहा जाता है।

सात स्वरों का यह व्यवहार, प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय संगीत में होता रहा है परन्तु भारतीय संगीत में सात स्वरों का व्यवहार एकाएक नहीं हुआ। अर्थात भारतीय संगीत में स्वर–सप्तक, प्रारम्भ सें ही सात स्वर युक्त नहीं रहा। भारतीय संगीत में सात स्वरों के विकास क्रम के प्रमाण भारतीय संगीत के प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। भारतीय संगीत के सात स्वरों का विकास क्रम एक से दो, दो से तीन, तीन से चार स्वर आदि इस क्रम में होते हुए सात स्वर तथा कालांतर में बारह स्वर तक हुआ है।

भारतीय संगीत में 'स्वर–सप्तक' के विकास क्रम के प्रथम प्रमाण वैदिक काल से मिलना प्रारम्भ हो जाते हैं। वैदिक कालीन संगीत स्वरों पर ही आश्रित रहा है। वैदिक संगीत के अंतर्गत वेदों की ऋचाओं को स्वरबद्ध कर गायन की रीति रही है जिसे सामगान कहा जाता है। वैदिक काल में वेद–मन्त्रों तथा ऋचाओं को स्वरबद्ध कर गाने के तीन ढंग प्रचलित रहे– आर्चिक, गाथिक तथा सामिक। आर्चिक के अंतर्गत वैदिक ऋचाओं का एक स्वर में गान किया जाता रहा वहीं गार्थिक में गान द्विस्वर युक्त था। सामिक, जिसे कालान्तर में सामगान भी कहा गया, के अन्तर्गत साम वेद में संकलित ऋचाओं का तीन स्वरों में गान करने की प्रथा रही है। साम वेद, विभिन्न शिक्षा ग्रन्थों, ब्राह्मण ग्रन्थों, प्रतिशाख्य आदि वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि साम गान के तीन स्वर–उदात्त, अनुदात्त व स्वरित हैं। अनेक आधुनिक विद्वानों ने उदात्त, अनुदात्त व स्वरित की व्याख्या करते हुए कहा है कि उदात्त का अर्थ उच्च, अनुदात्त का नीच तथा स्वरित का अर्थ समाहार है। तात्पर्य यह कि उदात्त ऊँचा स्वर है, अनुदात्त नीचा स्वर तथा स्वरित समाहार अर्थात् दोनों स्वरों (उदात्त एवं अनुदात्त) के बीच का स्वर अथवा जिस स्वर पर गायन समाप्त किया जाता है, ऐसा स्वर है। तीन स्वर युक्त साम गान पूर्व वैदिक काल का वैशिष्ट्य रहा है। यद्यपि वैदिक काल में ही सात स्वर युक्त साम गान करने की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी परन्तु पूर्व वैदिक काल में उदात्त, अनुदात्त व स्वरित, इन तीन स्वरों से युक्त साम गान प्रचलित रहा। वैदिक परम्पराओं की सुरक्षा व संरक्षण के लिए रचे गए ब्राह्मण ग्रन्थ, शिक्षा ग्रन्थ, प्रातिशाख्य आदि ग्रन्थों के अध्ययन से संकेत प्राप्त होते हैं कि आर्चिक गान में ऋक् वेद की ऋचाओं का पाठ्य भेद से 'प्रावचन' नामक एक स्वर में अथवा गये भेद से 'तानस्वर' संज्ञक स्वर में गान किया जाता था। वाजसनेय प्रातिशाख्य में साम गायकों की एक अन्य शाखा का उल्लेख प्राप्त होता है जो उदात्त व अनुदात्त, मात्र दो स्वर युक्त गान करती रही है। इन तथ्यों से संकेत प्राप्त होते हैं कि साम गान में भी प्रारम्भ में ऋक् के समान ही एक ही स्वर का प्रयोग होता था व कुछ सम्प्रदाय गाथिक के समान दो स्वर युक्त गान करते थे। इसी क्रम में कालांतर में साम गान तीन स्वर युक्त हो गया। तीन स्वर युक्त साम गान की प्रथा बहुत समय तक प्रचलित रही ऐसा प्रतीत होता है। आधुनिक काल में उपलब्ध सामवेद की प्रतियों में भी सामवेद के प्रथम खण्ड– पूर्वार्चिक में सभी ऋचाएँ तीन स्वरों में निबद्ध कर वर्णित की गई हैं। इस प्रकार पूर्व वैदिक युग में संगीत तीन स्वर युक्त रहा। अतः कहा जा सकता है कि यह तीन स्वर युक्त 'सप्तक' था।

कुछ अन्य उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में ही स्वरों का विकास तीन स्वरों के पश्चात् चार, पांच व कालांतर में सात स्वरों तक हो गया था। तैत्तिरीय संहिता में सामगान के चार स्वरों के नाम– उदात्त, अनुदात्त, स्वरित व प्रचय दिए गए हैं। वहीं बृहन्नारदीय पुराण तथा नारदीय शिक्षा में सामिकों के पाँच स्वर उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचित व निघात बताए गए हैं। पातंजलि कृत महाभाष्य में स्वरों की सात संज्ञाएँ– उदात्त, उदात्ततर, अनुदात्त, अनुदात्ततर, स्वरित, स्वरित से पूर्व का उदात्त व एकश्रुति प्राप्त होती हैं। नारदीय शिक्षा ग्रन्थ में भी सामगान के सात स्वरों की संज्ञाएँ प्राप्त होती हैं परन्तु ये स्वर नाम पातंजलि द्वारा दिए गए नामों से सर्वथा भिन्न हैं– क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वार। नारदीय शिक्षा के समकालीन व परवती ग्रन्थों में सामगान में प्रयुक्त स्वरों के प्रायः वही नाम प्राप्त होते हैं जो नारदीय शिक्षा में दिए गए हैं।

नारदीय शिक्षा ग्रन्थ 8वीं शताब्दी ईसा पूर्व से 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य में नारद मुनि द्वारा रचित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में 'स्वर' पर विशद् चर्चा की गई है। नारदीय शिक्षा ग्रन्थ में वर्णित सामिक स्वरों कुष्ट आदि में से 'चतुर्थ' स्वर हैं तथा तीन 'गुण वाचक'। प्रथम चार स्वरों– प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ के नामों से आभास होता है कि सम्भवतः सामगान में तीन स्वरों (उदात्तादि) के पश्चात् जब चार स्वरों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ तब यही चार स्वर सर्वप्रथम प्रयुक्त किए गए तथा बाद में इन चार स्वरों से नीचे मन्द्र, मन्द्र से नीचे अतिस्वार तथा कालांतर में इन सभी स्वरों से ऊँचा क्रुष्ट स्वर पहचाना गया। नारदीय शिक्षा में इन स्वरों की गणना इसी क्रम में की गई है– प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार तथा क्रुष्ट। नारदीय शिक्षा में वर्णित ये स्वर साम स्वर या वैदिक स्वर भी कहलाते हैं जिनका प्रयोग सामगान मात्र में ही किए जाने का विधान था। इनका प्रयोग लोक मनोरंजन में किया जाना सर्वथा वर्जित रहा।

नारदीय शिक्षा में सप्त वैदिक स्वरों के साथ सप्त लौकिक स्वरों के वर्णन भी प्राप्त होते हैं। ये लौकिक स्वर हैं– षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद। इन सप्त लौकिक स्वरों का प्रयोग सामान्य जन विभिन्न लौकिक अवसरों जैसे त्यौहारादि पर मनोरंजन हेतु करते थे। नारदीय शिक्षा में वर्णित लौकिक स्वरों की यही सात संज्ञाएँ आधुनिक काल तक भारतीय संगीत में प्रचलित हैं। नारदीय शिक्षा में साम स्वरों व लौकिक स्वरों में समानता अथवा तुलना भी दी गई है।

साम स्वर	**लौकिक स्वर**
प्रथम	मध्यम
द्वितीय	गान्धार
तृतीय	ऋषभ
चतुर्थ	षड्ज
मन्द्र	धैवत
अतिस्वार	निषाद
क्रुष्ट	पंचम

यहां यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन वैदिक स्वर सप्तक वक्र रहा है। लौकिक स्वरों के दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर संकेत प्राप्त होता है कि साम गायकों ने मध्यम, गान्धार, ऋषभ व षड्ज के पश्चात् धैवत स्वर को पहचाना। उसके पश्चात् निषाद स्वर प्राप्त हुआ तथा अंत में पंचम स्वर। वैदिक काल में संगीत की दोनों धराओं साम संगीत व लौकिक संगीत में भिन्न–भिन्न सप्त स्वर संज्ञाएं प्रचलित रही हैं।

स्वरों के विकास क्रम के अन्य प्रमाण 2 शताब्दी ई0 पू0 से 2 शताब्दी ईसवीय के मध्य रचित ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में प्राप्त होते हैं। नाट्यशास्त्र ग्रन्थ में भरत

मुनि ने दो ग्राम बताए हैं– षड्ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम। दोनों ग्रामों से सात–सात स्वर षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद हैं। भरत मुनि के अनुसार मध्यम ग्राम का पंचम स्वर, षड्ज ग्रामिक पंचम की तुलना में एक प्रमाण श्रुति उतरा हुआ है व दोनों ग्रामों के शेष स्वर समान हैं। जिसके कारण जहाँ षड्ज ग्राम का पंचम चार श्रुति का है वहीं मध्यम ग्राम का पंचम तीन श्रुति युक्त है। इसी क्रम में षड्ज ग्रामिक धैवत तीन श्रुति युक्त जबकि मध्यम ग्रामिक धैवत चार श्रुति युक्त है। इसके अतिरिक्त भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र ग्रन्थ में 'साधारण विधि' का उल्लेख किया है जिसके माध्यम से उन्होंने दो पृथक स्वर प्राप्त किए जिन्हें 'साधारण स्वर' या 'स्वर साधारण' कहा है। साधारण विधि के अन्तर्गत भरत मुनि ने गान्धार व निषाद को दो–दो श्रुति उत्कर्ष कर दो नवीन स्वर प्राप्त किए– अंतर गान्धार तथा काकली निषाद। इस प्रकार नाट्यशास्त्र काल तक भारतीय संगीत में सात स्वरों के अतिरिक्त तीन स्वर–मध्यम ग्रामिक पंचम, अंतर गान्धार तथा काकली निषाद प्रत्यक्ष रूप में व परोक्ष रूप में मध्यम ग्रामिक धैवत भी प्रयोग किए गए थे।

भारतीय इतिहास के प्राचीन काल के पश्चात् मध्य काल (13वीं शताब्दी ई0 से 18वीं शताब्दी ई0) भारतीय संगीत में स्वर के विकास क्रम के दृष्टिकोण से विशिष्ट रहा है। इस काल में संगीत का बहुप्रसिद्ध व बृहद ग्रन्थ पं0 शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में बाईस श्रुतियों पर निश्चित किए गए षड्जादि सात स्वरों के अतिरिक्त बारह अन्य स्वर भी बताए गए हैं जिन्हें 'विकृत स्वर' कहा गया। संगीत रत्नाकर में इन बारह विकृत स्वरों की श्रुतियों पर स्थिति भी बताई गई है परन्तु जिन श्रुतियों पर वे स्वर स्थित किए गए हैं उनका चयन किस प्रकार किया गया यह निर्दिष्ट नहीं है। स्वर–सप्तक के विकास के पक्ष से सम्पूर्ण मध्यकाल में सभी सांगीतिक ग्रंथों के रचनाकारों पर संगीत रत्नाकर ग्रंथ का प्रभाव झलकता है। प्रायः सभी ग्रन्थकारों ने स्वरों के विषय में अपना ही मत प्रतिपादित किया है। उदाहरणार्थ– *संगीत पारिजात* ग्रन्थ में षड्जादि सात स्वरों के अतिरिक्त बाईस स्वर, *राग विबोध* ग्रन्थ में षड्जादि के अतिरिक्त दस अन्य स्वर, *राग तरंगिणी* ग्रन्थ में षड्जादि के साथ दस स्वर, *स्वरमेलकलानिधि* ग्रन्थ में षड्जादि स्वरों के अतिरिक्त सात अन्य स्वर भी बताए हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थकारों ने भी अपने–अपने मत प्रकट किए हैं।

मध्य काल में भारतीय संगीत पृथक्–पृथक् दो पद्धतियों में भी परिलक्षित हो गया– दक्षिण भारत में प्रचलित दक्किनी या कर्नाटक संगीत पद्धति तथा मध्य व उत्तर भारत की हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति। उत्तर भारतीय संगीत में, आधुनिक काल में स्वरों के विकास क्रम में स्थायित्व आ गया है। अंतिम रूप से इस स्थायित्व का वर्णन पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे ने अपने संस्कृत ग्रन्थ श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् में किया है। उन्होंने षड्जादि सात स्वरों को शुद्ध स्वर कहा है तथा इनके अतिरिक्त उन्होंने पाँच अन्य स्वरों का भी वर्णन किया है जिन्हें 'विकृत' स्वर कहा जाता है। इन पाँच विकृत स्वरों में से चार स्वर 'कोमल' तथा एक स्वर 'तीव्र' कहलाता है। इस प्रकार भारतीय संगीत में स्वरों का विकास एक स्वर से होते हुए बारह स्वर पर स्थिर हो गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

विश्व की सर्वथा सभी प्राचीन संस्कृतियों जैसे यूनानी, अरबी, दक्षिण–एशियाई व चीनी संस्कृतियों में संगीत में भी पांच स्वर युक्त स्वर–सप्तक प्रचलित रहे। कालांतर में सांस्कृतिक आदान–प्रदान के अन्तर्गत अन्य संस्कृतियों के संगीत में भी सात स्वरों का समावेश हो गया। भारतीय संगीत में स्वर–सप्तक के विकास की मौलिकता को परिलक्षित करना प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य है।

शोध प्रविधि

अवलोकन प्रविधि
विश्लेषण प्रविधि
विवेचन प्रविधि
अन्वेषण प्रविधि

निष्कर्ष

भारतीय संगीत आदिम सांगीतिक व्यवस्था है। विश्व की अन्य संस्कृतियों के समान भारतीय संगीत दूसरी संस्कृतियों के संगीत से आयातित विचारों को पल्लवित करता नहीं दिखता। भारतीय संगीत में स्वरों तथा स्वर–सप्तक का विकास उसकी मौलिकता का द्योतक है।

प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतीय संगीत में स्वरों का विकास वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो गया था। तथा वैदिक काल में ही स्वर अपनी विकसित अवस्था को प्राप्त कर स्वर–सप्तक या सप्तक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे। आदिम 'स्वर–सप्तक' तीन स्वरों तक विकसित हो कर दीर्घ काल तक प्रचलित रहा। स्वरों की चार संख्या वाचक संज्ञा से आभास प्राप्त होता है कि तीन स्वर युक्त 'सप्तक' के पश्चात् चार स्वर युक्त 'स्वर–सप्तक' प्रचार में रहा। तदनन्तर 'स्वर–सप्तक' पांच स्वर युक्त हो गया। साम संगीत के क्रमानुगत पांच स्वरों से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में पांच स्वर युक्त 'सप्तक' की प्राप्ति के पश्चात् कुछ काल तक स्थायित्व आ गया तथा वैदिक स्वर–सप्तक पांच स्वर युक्त रहा। आधुनिक भारतीय संगीत में पांच स्वरों के समूह को विशिष्ट संज्ञा– औडव या औडुव दी गई है। कालांतर में यही स्वर–सप्तक छः स्वर युक्त हो 'षाडव' तथा परवर्ती काल में सात स्वर युक्त हो 'सम्पूर्ण' कहलाया। इस प्रकार वैदिक युग में ही भारतीय स्वर–सप्तक परिपक्व अवस्था को प्राप्त कर गया। परंतु स्वरों का विकास कालांतर में भी होता रहा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Naradiya Siksa- Narad Muni - Usha R. Bhise, Pub.: Bhandrkar Oriental Research Institute, Poona.*
2. *Sangita Ratnakara - Sarngadeva - Dr. R.K. Shringi & Dr. Prem Lata Sharma, Pub.: Motilal Banarsi Dass, Delhi.*
3. *वेद– ऋग्वेद–यजुर्वेद–सामवेद प्रथम संस्करण, संवत् 2030 प्रकाशकः दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली*
4. *नाट्यशास्त्र– एम. राधकृष्ण कवि, प्रकाशकः ओरिएन्टल इंस्टिट्यूट, बड़ौदा*
5. *शिक्षासंग्रहः – आचार्य श्री राम प्रसाद त्रिपाठी,*

प्रकाशकः सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

6. *श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्–पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे*
7. *नारदीय शिक्षा में संगीत– मनीष डंगवाल, प्रकाशकः राज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली*
8. *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन – पं. भातखण्डे, प्रकाशकः संगीत कार्यालय, हाथरस*
9. *भारतीय संगीत का इतिहास – डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, प्रकाशकः चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी*
10. *भारतीय संगीत का इतिहास – डॉ0 ठाकुर जयदेव सिंह, प्रकाशकः संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता*
11. *संगीत बोध – डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, प्रकाशकः मध्य प्रदेष हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल*